भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में सांस्कृतिक संदर्भ

(डॉ. सरिता)

यदि वैश्विक परिदृश्य को देखा जाए तो प्रत्येक देश का अपना पारिस्थितिकी तंत्र होता है और इसी के अनुसार उसके सांस्कृतिक रूप होते हैं। साहित्य में सामाजिक विश्लेषण की दृष्टि संवेदना के विविध आधारों पर टिकी होती है, जिनका संबंध मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से होता है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से आधुनिक काल तक मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक जीवन से भौतिक जीवन तक चित्रित किया गया है। एक प्रकार से यह उसके जीवन का सांस्कृतिक चित्रण ही है जहाँ उसके व्यवहार परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में भवानीप्रसाद मिश्र की कवि के रूप में पहचान 'दूसरा सप्तक' में संग्रहीत कविताओं के तौर पर हुई। इनका कृतित्व भारतीय समाज और संस्कृति के यथार्थ स्वर की अभिव्यक्ति है। 'चकित है दुःख', 'अंधेरी कविताएँ', 'गांधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबू के शिलालेख', 'व्यक्तिगत', 'परिवर्तन जिए', 'त्रिकाल संध्या', 'अनाम तुम आते हो', 'संप्रति', इदं न मम्', 'गीत फरोश' आदि कृतियों में मानवीय भावनाओं का स्पन्दन और स्पर्श है। इसके साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों के उन प्रभावों को चित्रित किया है जो आदमी के चिन्तन और व्यवहारों पर गहरा असर डालते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य भारतीय जनमानस के अवचेतन की मूर्त प्रस्तुति है और हमारी चित्तवृतियों का सामाजिक व्यवहार भी है। आधुनिक काव्यधारा में कवियों का उद्देश्य सामाजिक मूल्यों को अभिव्यंजना की दृष्टि से प्रस्तुति करना रहा है, इसी का निर्वाह मिश्र जी के काव्य सृजन में दिखाई देता है।

कवि अपने रचना काल में गांधीवादी मूल्यों से प्रभावित रहे हैं और इसी के साथ–साथ उनके सामने भारतीय संस्कृति की सनातन परंपरा का आदर्श रूप भी रहा है। भारतीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों को अनुकरण करने की प्रवृति रही है जो परोपकार, अहिंसा, करूणा, सत्य, बंधुत्व और कर्म पर आधारित है। परन्तु, सामाजिक विकास और प्रगति के साथ–साथ मनुष्य के इन आदर्शों में परिवर्तन होता गया जिसके प्रभाव को भवानीप्रसाद मिश्र अपने काव्य सृजन में दिखाते हैं। आधुनिक काल में भारतीय परिवेश में पाश्चात्य संस्कृति का प्रचलन बढ़ा है और मनुष्य के जीवन में भौतिकवाद की प्रवृति में वृद्धि हुई है, जिससे हमारे आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। 'गीत फरोश' में उन्होंने इस और ध्यान आकृष्ट किया है कि अब शायद सामाजिक सृजन और बोध की स्थितियाँ परिवर्तित हो गई हैं –

स्वावलम्बन और कर्म का सांस्कृतिक अनुकरण गांधी जी के आदर्शों में भी दिखाई देता है, जिसे कवि ने समाज के लिए अनुकरणीय माना है। उनका विश्वास है कि हमें जीवन के लक्ष्यों के प्राप्ति के लिए उचित साधनों की तलाश करनी चाहिए, तभी हमारा सामाजिक उत्कर्ष संभव है। यहाँ पर कवि ने सामाजिक प्रगतिशीलता का मार्ग प्रशस्त किया है जो परिस्थितियों का प्रतिकार करने में नहीं, बल्कि उसी में प्रगति के अवसर खोजने से ही मिल सकता है –

यह विचारणीय है कि भारत की महान संस्कृति और आधुनिक युग में गांधीवादी मूल्यों के होते हुए हमारे सामाजिक आदर्श प्रश्नों के घेरे में दिखाई देते हैं। इस समय अनेक विचारधाराओं और दार्शनिक सिद्धान्तों ने भारतीय जनमानस को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप जनसमुदाय में इनके प्रति आकर्षण दिखाई दिया, उन्हें लगा कि उनके जीवन की सभी समस्याओं का निराकरण इन आयातित सिद्धान्तों और स्थापनाओं में है। कवि, भारत की इन बदलती हुई परिस्थितियों में अपने आप को किंकर्तव्यविमूढ़ पाता है और जीवन की इच्छाओं का दमन ही उनके अवचेतन का स्थायी दर्शन बन जाता है –

भारत का सांस्कृतिक दर्शन मानवीय संवेदनाओं की रक्षा करता है। अनादि काल से जप, तप और विविध साधनाओं के माध्यम से मनुष्य के अस्तित्व को बचाना ही इस दर्शन का लक्ष्य रहा है। आधुनिक काल में मशीनीकरण के विकास के साथ मानव का व्यवहार तकनीकी हो गया और वह संवेदना के रूपों को तर्क–वितर्क के पैमाने पर देखने का आदि हो गया जिससे सांस्कृतिक व्यवहारों में शिथिलता का आना स्वाभाविक था। भवानीप्रसाद का सांस्कृतिक चिंतन इसी का उत्कर्ष है–

मिश्र जी की समाज में गहरी आस्था रही है। सामाजिक आग्रह भारत का सांस्कृतिक गुण है। वे किसी बाहरी सिद्धांत को इस पर थोपना नहीं चाहते हैं, इसका कारण यह है कि हमारी भौगोलिक जरूरतें अलग तरह की हैं जो हमारे सांस्कृतिक परिवेश से ही पूरी हो सकती हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी इस दृष्टि पर प्रकाश डाला, इस

समय भारत में एक साथ साहित्य, राजनीति और सामाजिक स्तर पर मार्क्स और गांधी की विचारधारा का प्रभाव बौद्धिक वर्ग पर था, परन्तु मिश्र जी गांधीवादी मूल्यों में ही भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास देखते हैं। मार्क्स का सामाजिक विकास का सिद्धान्त उन्हें श्रेयस्कर नहीं लगा, क्योंकि इसमें व्यवस्था का विरोध ही नहीं है, बल्कि हर एक धारणा और मत का प्रतिकार भी दिखाई देता है। इसलिए मिश्र जी की आस्था सिद्धान्तों में नहीं बल्कि सामाजिक व्यवहारों में है –

भवानीप्रसाद मिश्र ग्रामीण संस्कृति के पोषक रहे हैं। ग्रामीण परिवेश भारतीय संस्कृति का आदर्श रहा है, परन्तु आधुनिक सभ्यता और विकास के नाम पर मानव के द्वारा इसका ह्रास हुआ है। विकास की इस प्रक्रिया ने सामाजिक विघटन को पैदा किया जिससे समाज का मूल ढांचा यानि की ग्रामीण संरचना का स्वरूप ही बिगड़ गया। कवि ने इस पीड़ा बोध को विविध रूपों में चित्रित किया है। कवि यहाँ पर यह बताने का प्रयास करते हैं कि विकास की इस भौतिकता आधारित संस्कृति ने मनुष्य की आस्था, विश्वास, करूणा और प्रेम जैसी प्रवृतियों को आहत किया है। अपसंस्कृति का यह विकृत रूप भारतीय मूल्यों के विपरीत था। इस अपसंस्कृति से मशीन का महत्व बढ़ा है और मनुष्य की शक्ति क्षीण हुई है, फलस्वरूप विकास अर्थहीन है और मानव असहाय। भारतवर्ष में सामाजिक प्रगतिशील संस्कृति की परम्परा रही है और मनुष्य अपने जीवन में उन्हीं कर्म और ज्ञान के क्षेत्रों में वृद्धि करता है जो मानव चरित्र को सुसंस्कृत करते हैं, परन्तु भौतिकता ने अभाव को और अधिक बढ़ा दिया है –

प्रेम और सौहार्द की संस्कृति भारतवर्ष की पहचान है। ऐतिहासिक संदर्भों से यह ज्ञात है कि विश्व भर से आने वाले व उनकी संस्कृति भारतीयता का हिस्सा बनी। मानव जीवन की पूरकता कवि प्रेम में ही पाने के आकांक्षी हैं। जीवन की सार्थकता ही हमारे मन में सामाजिक सौहार्द को पैदा कर सकती है। जीवन जगत में जितनी भी विषमताएँ हैं वे सामाजिक प्रेम के अभाव के कारण हैं। प्रेम सैद्धान्तिक नहीं, बल्कि जीवन का व्यावहारिक बोध है और भारतीय संदर्भों में यह सनातन और पवित्र आचरण है जिसकी सार्थकता ही उसका साध्य है –

मानव जीवन में सद्‌गुणों का विकास बहुत जरूरी है। अपने व्यक्तित्व में अच्छी प्रवृतियाँ तभी विकसित होंगी जब हमारे अन्दर गुणों आग्रह होगा। भवानीप्रसाद मिश्र के सामने साधुओं, संतों और चिंतकों की व्यापक परंपरा रही है और उन्हें यह पूर्ण विश्वास है कि अनादिकाल से इस परंपरा ने भारतवर्ष के चरित्र को वैश्विक पहचान दी है और इसी से ही हमारी सामाजिक संरचना सुदृढ़ बन पायी है। इसी का अनुकरण काव्य में देखने को मिलता है कि मनुष्य स्वार्थ को त्याग कर परोपकार की भावना को प्राथमिकता देकर ही समाज में सद्‌गुणों का प्रसार और प्रचार कर सकता है –

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भवानीप्रसाद मिश्र अपने काव्य में जीवन की सार्थकता के बुनियादी आधारों का उल्लेख करते हैं जिनका पालन करके मानव सुसंस्कृत बन सकता है। समाज में परिवर्तन अवश्वंभावी है, परन्तु उससे समाज के सांस्कृतिक रूप आहत नहीं होने चाहिए। मनुष्य के आस–पास की स्थापनाएँ जीवन में संतुलन और नवनिर्माण के लिए हैं। मिश्र जी ने अपने काव्य में इस बात पर बल दिया है कि वास्तविक सुख अति संग्रह या भौतिकता में नहीं, अपितु संतुष्टि में है, यही भारतीय दर्शन है। विश्वभर के अनेक दर्शन भौगोलिक सापेक्ष में समाज के विकास पर बल देते हैं, जबकि भारतीय दर्शन वैश्विक सापेक्ष में मानवीय मूल्यों के निर्माण पर बल देता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' आदि संस्कृति के व्यावहारिक रूप हमें भारतीय परिवेश में ही मिल सकते हैं। कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से जिस सृजनात्मक चेतना को विकसित किया है, वह है– मानवतावादी। इसे समाज की संसक्ति से ही पाया जा सकता है। मानव का अस्तित्व, मानवीय मूल्यों की स्थापना और उसके आदर्शों की सामाजिक प्रतिबद्धता ही राष्ट्र को श्रेष्ठ बनाती है।